गोहुम तो जीरा जइसन होइलक

अरविंद

पलामू भुखमरी और अकाल-2

छतरपुर प्रखंड के मदनपुर गांव के 61 वर्षीय बालगोविंद राम ने 1967 का अकाल देखा है. वह कहते हैं : तब अकाल के बावजूद कुओं में पानी था. सरकार व जिला प्रशासन के उपाय थे. खाने को घाटा, दर्रा, गेहूं दिये गये थे. अब तो पानी न तो पास के अधूरे नहर में है और न कोई मुकम्मल राहत कार्य. वह कहते हैं : गोहुम (गेहूं) तो जीरा जइसन होइलक. लोहराही गांव के लाला गोपाल शरण बताते हैं : चार-पांच साल से स्थिति खराब है. भदई, अगहनी (खरीफ) और रबी सब हाथ से निकल गये. भरवाडीह के चलितर साव कहते हैं : पानी के साधन नइखे, इहां तो अक्षत छींटे के धान तक नइखे. यह स्थिति पूरे पलामू में है.

कृषि निदेशालय, झारखंड के अनुसार राज्य में इस वर्ष 57 फीसदी धान की क्षति हुई है. तेलहन की बुवाई लक्ष्य के मुकाबले 59 फीसदी कम रही. दलहन का उत्पादन 59 फीसदी, मकई का 44 फीसदी और गेहूं का 12.5 फीसदी कम हुआ है. राज्य में अनाज निर्भरता के लिए चाहिए 52.56 लाख टन. इस साल उत्पादन लक्ष्य 36.8 लाख टन था, जो अंतत: 17.77 लाख मिट्रिक टन ही हो पाया है. बिरसा कृषि विवि के अनुसार राज्य में अमूमन फूड्ग्रेन डेफिसिट 52 फीसदी है. जबकि सब्जी में 12 प्रतिशत, फल में 65 प्रतिशत, दूध में 51 प्रतिशत, मछली में 34 फीसदी की कमी है.

ऐसे में स्वाभाविक है कि गांवों में हालात बदतर हैं. विवश होकर 2009 में जून-अगस्त के मध्य छतरपुर के हजारों किसानों ने राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्य न्यायाधीश, राज्य के राज्यपाल सहित कई लोगों को ज्ञापन दिया कि उन्हें आत्महत्या करने की इजाजत दी जाये. किसानों का यह आर्तनाद कृषि संकट की वह बानगी है, जहां खेती-किसानी के घाटे का सौदा होने के कारण 1997 से लेकर 2006 के बीच देश भर में एक लाख 66 हजार से अधिक किसान आत्महत्या कर चुके है.

पलामू के इस चर्चित इच्छा मृत्यु आंदोलन से जुड़े डॉ अरुण सिंह बताते हैं कि ' पिछले तीन साल से यहां सूखे का भारी प्रकोप है. हमने छतरपुर की 30 पंचायतों के एक हजार किसानों का रैंडम सैंपल सर्वे कराया था. सर्वे के अनुसार, 80 फीसदी किसान पेशे से आजिज आ चुके हैं. 95 फीसदी ने जमीन का एक टुकड़ा गिरवी रखा है. **शेष पेज नौ पर**

पेज एक का शेष

गोहुम तो जीरा...

92 प्रतिशत मालगुजारी दे पाने में अक्षम हैं. सर्वे रिपोर्ट हाइकोर्ट की चीफ जस्टिस तक ने मंगवा कर देखी थी. प्रदर्शन व घेराव के दौरान हमने जिला प्रशासन के समक्ष 21 सूत्री मांगें रखी थीं, जिसमें से 15 मांगों के प्रति प्रशासन ने सैद्धांतिक सहमति जतायी थी. ये मांगें फसल बीमा, नकद सहायता, कृषि आगत की उपलब्धता, किसान व मजदूर में फर्क करने, सिंचाई के साधनों पर नये सिरे से काम करने की जरूरत से जुड़ी थीं. पर अब भी राहत कार्य शुरू नहीं हुआ है. जिला प्रशासन तो संवेदनहीन बना रहा.'

बीते 26 अक्तूबर को योजना आयोग की सदस्य डॉ सईदा हमीद के समक्ष सूखा पीड़ितों की जन सुनवाई भी हुई. डॉ सईदा हमीद कहती हैं, ' यहां सुखाड़ की भयावह स्थिति है और भुखमरी भी काफी अहम मसला है. लोगों तक सामाजिक योजनाओं का लाभ नहीं पहुंच रहा.' इस जन सुनवाई में आये दिल्ली विवि में प्राध्यापक अपूर्वानंद बताते हैं कि 'लोग बरसों से सूखे की मार तथा प्रशासनिक राहत की कमी के इस कदर आदी थे कि अधिकतर तो इस बात को लेकर परेशान थे कि किसी तरह वे बीपीएल सूची में शामिल हो जायें या उन्हें पेंशन या फिर इंदिरा आवास मिल जाये. बात चाहे भुखमरी की हो या बाहर पलायन के दौरान पुरुषों की मृत्यु की, क्षेत्र में विधवाओं की संख्या काफी ज्यादा है.'

भरवाडीह के फगुनी यादव बताते हैं, 'ई सब गांव में कोई आदमी न मिलतवा. सब गांव से बाहर कमाये-खाये गेल हथी.' छठु कहते हैं, 'हम सब किसान ही, शहर में कुली-कबाड़ीवाला काम कइसे करब!' सच यही है कि मनरेगा में मजदूरी के लिए पारंपरिक किसान तैयार नहीं होते. 56 वर्षीय इंद्रदेव बताते हैं, 'पेट पाले खातिर महाजन से 10 रुपये सैकड़ा सूद पर करज लेवल पड़ी. तीस-चालीस हजार क कर्ज चढ़ल हवा. अब तो सब ढोर-मवेशी बेचे के बाद भी हालत नखवा सुधरत.' कमोबेश यहां वही हालात है, जिसे राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 59 वां दौर में दर्ज किया गया है कि देश के एक तिहाई कृषक खेती के काम से आजिज आ चुके हैं और 40 फीसदी पेशा बदलने की चाह रखते हैं. पांडु प्रखंड के विश्रामपुर स्थित एक गांव से आनेवाले ललन बताते हैं : मुरमा, मलवरिया, तीसीबार, ताला, झरना की बात करिये या जपला क्षेत्र के कोशियारा, सारेबा, करीमनडीह, लोहरपुरा, गडेरियाडीह, सब जगह सूखे की मार एक है. पाटन थाना क्षेत्र के सहदेव बताते हैं : पांडेपुआ, रजहरा, धनगाइ, पथरा, सिरमा, बिरहोरी आदि में क्या मुंडा, चेरो व रजवार या महतो, सबकी हालत एक जैसी है.

राज्य में 72 प्रतिशत छोटे, सीमांत व मझोले किसान हैं, जिनके पास दो हेक्टेयर से कम रकबा है. कुल लैंड होल्डिंग में ये 83 प्रतिशत हैं. छोटी जोत के कारण पांच-छह सदस्यों के परिवार का साल भर गुजारा नहीं हो सकता. निम्न उत्पादकता का मूल कारण झारखंड व पलामू में पुरातन व आदिम जमाने की हल-बैल आधारित खेती-बाड़ी होना भी है. प्रो अर्जुन सेनगुप्ता की अध्यक्षतावाली नेशनल कमीशन फॉर एंटरप्राइजेज इन अनऑर्गेनाइज्ड सेक्टर (2007) के अनुसार 40 प्रतिशत भारतीय किसान मजदूरी से मिली पूरक आय से आजीविका चलाते हैं, क्योंकि कृषि से केवल परिवार की 46 फीसदी जरूरत ही पूरी हो पाती है. पलामू में 19 वीं सदी में 90 फीसदी के करीब वन थे, जो पर्यावरणीय दुष्प्रभावों के दौरान 'शॉक ऑब्जर्वर' का काम करते थे. इन वनों की तादाद 1926 में 65 फीसदी थी और 1966 में 46 फीसदी. अब 30 फीसदी से भी कम रह गयी है. आदिवासियों की बड़ी आबादी जीविकोपार्जन के लिए खेती के बाद जंगलों पर आश्रित रहती है, मगर वनह्रास से स्थिति बिगड़ती गयी है. आजीविका के दिनों का सामान्य गणित है : मक्के की फसल से दो महीने, चावल से तीन महीने और महुआ, तेंदू तथा अन्य वनोपज से दो महीने जोड़ लें, तो बाकी पांच-छह महीने पेट भरने की जद्दोजहद में गुजारने पड़ते हैं. वरिष्ठ पत्रकार गोकुल बसंत बताते हैं, 'दस फीसदी किसान भी ऐसे नहीं हैं, जो एक साल फसल उत्पादन न हो तो अगले साल आजीविका संभाल लें. पांच फीसदी किसान ही ऐसे हैं, जो सूखे को दो साल तक झेल सकते हैं. इस तरह आम किसानों के पास छह महीने खाने के लाले पड़ते हैं.' स्वाभाविक है कि लोगों में 'जे खिलावे, से जिलावे ला' की भाग्यवादी प्रवृत्ति हावी हो गयी है. *(जारी)* *(सीएसडीएस के इनक्लूसिव मीडिया फेलोशिप के तहत लिखा गया आलेख.)*

PRABHAT KHABAR, RANCHI
JUNE, 17, 2010